# भूमिका

## (अपनी बात)

### *श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय*

मनुष्य ने अपने बुद्धिबल से जहां एक ओर भौतिक जगत के अनेक विस्मयकारी रहस्यों को उद्घाटित किया है, वहीं उसने मनोवैज्ञानिक विश्लेषणों के द्वारा, अपने अन्तर्जगत की गहराइयों में भी दूर तक उतरने का उपक्रम किया है। तथापि चेतना का रहस्य, वैज्ञानिकों के लिए सबसे बड़ी चुनौती बना रहा है। आज दुनिया के बुद्धिजीवियों का, इस विषय में एकमत है, कि चेतन-सत्ता ही सृष्टि का आधारक-नियामक तत्व है। जो सूक्ष्मतम और एक रस व्यापक है। चिरंतन सत्य है, अल्टीमेट पावर है। आत्मा, परमात्मा ईश्वर आदि उसी के नाम हैं। ऐसा जानते और मानते हुए भी, उसके अध्ययन विश्लेषण और प्रत्यक्षीकरण में, वैज्ञानिक बुद्धि असफल या असमर्थ रही है। वस्तुतः जो चेतन सत्ता निर्लिप्त भाव से समस्त सृष्टि, समस्त प्राणियों और इनके मनबुद्धि आदि मे स्वयं क्रियाशील है, उसे पकड़ पाने की क्षमता, इनमें भला आयेगी कहां से ? वही-वही तो है, उसे देखे जाने कौन ? बिहारी ने लिखा है-

**जगत जनायो जेहि सकल, सो हरि जान्यो नाहिं।**
**ज्यों आखिनु सब देखिये, आंख न देखी जाहिं।।**

अपनी आंखों से अपनी ही आंखे कैसे देखी जायें ? जिसे बोध होना है, वह भी वही तो है, जो बोध का विषय है। वही दृश्य, वही दृष्टा भी है। वही ज्ञेय है, और ज्ञाता भी वही। सृष्टि के सारे स्पंदन उसी से हैं, उसी में हैं। आध्यात्मिक महापुरुषों ने अपने भौतिक जीवन का मूल्य देकर, इस पहेली का हल ढूंढ़ा, और पाया, कि परम चेतन अन्य पदार्थों की भांति आंखों से नहीं देखा जा सकता। वह अनुभूति का विषय है, अनुभव स्वरूप है-

**न संदृशे तिष्ठति रुपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनेनम्।**
**हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो, य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति।।**

उस चरम सत्ता को देखने या जानने समझने का एक ही उपाय ऋषियों ने बताया है, कि तुम अपने में ही अपने आप को देख लो, जान लो। तुम्हारा आत्म स्वरूप ही ज्ञेय है। तत्वमसि– वह तुम हो।

**सो तैं, ताहि तोहि नहि भेदा। (मानस)**

भारतीय मनीषा तो पदे–पदे, आत्मानुभूति के उद्योग की ही प्रेरणा देती है। वेद का आदेश है–

'आत्मानम् विद्धि' – अपने आपको जानो।

उपनिषद् की राय है–

**'आत्मा वा अरे श्रोतव्यः मंतव्यः दृष्टव्यः।**

आत्मा ही श्रवणीय मननीय तथा दृष्टव्य है।

श्री मद्भागवत महापुराण के अनुसार–

**'ज्ञानं निश्रेयसार्थाय पुरुषस्यात्म दर्शनम्** (3–26–2)

पुरुष का स्वंय को जानना (आत्मदर्शन) ही ज्ञान है। यही निश्रेयस या मोक्ष का स्वरूप है।

तत्परैरात्मलभ्यः (श्रीमद्भागवत)

''वह परमेश्वर अपने में ही मिलता है।''

तस्मात् जिज्ञासयात्मानम् आत्मस्थं केवलं परं। (श्रीमद्भागवत)

इसलिए आत्म स्वरूप को जानने की इच्छा करनी चाहिए। वह अद्वैत परम सत्ता अपने में ही स्थित है।

ग्रीक सभ्यता संसार की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है। आज से हजारों वर्ष पूर्व, ग्रीस के एथेनियम मंदिर के द्वार पर बड़े–बड़े अक्षरों में लिखा था– ळछव्ज्भ्म् ैम्।ल्थ्छ अर्थात स्वयं को जानो। अंग्रेजी संसार में आजकल ादवू जीलेमसा या ेमसा त्मंसप्रंजपवद जैसे सूत्रों से परोक्षतः सभी परिचित हैं।

तो क्या, स्वयं को जानना मनुष्य का अन्तिम साध्य है? क्या यही परम् पुरुषार्थ है? क्या वस्तुतः हम स्वयं को नहीं जानते ? हां, सचमुच ऐसा ही है। हां, हम स्वयं से अपरिचित हैं। यह एक चौंकाने वाला सत्य है, और अशरफुल मखलूकात[1], कहलाने वाले हम मनुष्यों के लिए, बडी लज्जास्पद स्थिति भी है, यह। आत्म–विस्मृति

की इस बिडम्बित स्थिति से उबरना ही, जीवन-सिद्धि है। मनुष्य जन्म की सार्थकता इसी में है।

हम मनुष्य, स्वयं को अन्य प्राणियों की अपेक्षा, श्रेष्ठतर या अधिक सौभाग्यशाली केवल इसीलिए मान सकते हैं, कि मनुष्य में ही आत्म-बोध की संभावना है, अन्य देह धारियों मे नहीं। श्रीमद्भागवत में एक मिथकीय गल्प है-

''जब सृष्टिकर्ता ब्रह्मा ने सृष्टि रचना कर ली, तो परमात्मा को उसमें अपने रहने योग्य स्थान कहीं नहीं मिला। इस पर ब्रह्मा ने बड़े मनोयोग से मनुष्य की सृष्टि की, और भगवान ने उसे अपने निवास-योग्य पाया, उसमें निवास किया।''

इसका आशय यही है, कि मानव, सृष्टि की सर्वोत्तम कृति है, और उसमें भगवत्ता को वरण करने की, आत्म-साक्षात्कार की योग्यता है। संभवतः इसीलिए महर्षि व्यास ने कहा है-

'नहि मनुष्यात् श्रेष्ठतरं किंचित्।' (महाभारत) मनुष्य से महत्तर कुछ भी नहीं है। इसी प्रकार

**'नर तन सम नहिं कउनिउ देही।**
**जीव चराचर जाचत जेही।।**
**बड़े भाग मानुष तन पावा।**
**सुर दुर्लभ सद्ग्रंथनिगावा।।'**

कह कर, मानसकार ने भी इसकी महिमा गाई है। और इसे 'साधन धाम मोक्षकर द्वारा'- बताया है। कुरान में इंसान को अल्लाह का नायब कहकर, उसे श्रेष्ठता दी गई है। हम विचार शील प्राणी हैं, सोचें, समझें। क्या इतने महिमामय मनुष्य-जन्म की सार्थकता, केवल खाओ , पियो, मौज, करो में ही है? हमारे मनीषी संत महापुरूषों ने हमें पग-पग पर आगाह किया है कि-

**यहि तन कर फल विषय न भाई।**
**स्वर्गउ स्वल्प अन्त दुखदाई।।**
**नर तन पाइ विषय मन देहीं।**
**पलटि सुधा ते सठविष लेहीं।।**

और संकेत किया है कि मनुष्य जन्म की सार्थकता साधना करके निश्रेयस (मोक्ष) की प्राप्ति में है।

**जो न तरै भवसागर, नर समाज अस पाइ।**

**सो कृत निंदक मंदमति, आत्माहन गति जाइ।। (मानस)**

यह भी विचारणीय है, कि यह शरीर, नश्वर और क्षण भंगुर है। थोड़े समय के लिये हमें मिला है। कबीर साहब की सी दृष्टि हो इस संबन्ध में–

**"पानी केरा बुद बुदा, अस मानुष की जात।**
**देखत ही छिप जायगा, ज्यों तारा परभात।।**
**यह तन कांचा कुंभ है, लिए फिरै जो साथ।**
**ढबका लागा फूटिया, कुछू न आया हाथ।।"**

इसलिए यह शरीर है, तभी तक अवसर है। एक छोटी सी अवधि। इसका सार्थक उपयोग कर पाना ही पुरूषार्थ है, सौभाग्य है, बुद्धिमत्ता है। अन्यथा– 'मन पछितैहै अवसर बीते।'

**'यहि अवसर चेत्या नहीं, पशु ज्यों पाली देह।**
**राम नाम जाना नहीं, अंत पड़ी मुख खेह।।'**
**(कबीर)**

इस लिए भर्तृहरि के शब्दों में–

**"यावत् स्वस्थमिदं कलेवर गृहं यावच्च दूरे जरा।**
**यावच्चेन्द्रिय शक्तिरप्रतिहता यावत् क्षयोनायुषः।।**
**आत्म श्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्।**
**प्रोद्दीप्ते भवने तु कूप खननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ।।"**

"बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि, 'जब तक यह शरीर स्वस्थ है, बुढापा दूर है, इन्द्रियों में शक्ति–सामर्थ्य है, और जब तक आयु शेष है, तभीतक आत्म कल्याण के लिए महान प्रयत्न करे। अन्यथा घर में आग लग जाने पर फिर कुआं खोदने का उपक्रम कैसा ?

देखा जाय तो, मानव जाति के विकास का समूचा इतिहास, प्रकृति को जीतकर

स्वाधीन होने, मृत्यु की गुत्थी सुलझाकर अमरत्व प्राप्त करने, और स्थायी सुख–शान्ति पाने के प्रयत्नों का इतिहास रहा है। किन्तु इनमें जो अधिकांश प्रयास बाहरी पदार्थ–जगत में हुए, वे निष्फल सिद्ध हुए हैं, और अब तक निरर्थक सिद्ध हो रहे हैं। प्रकृति पर विजय पाना तो दूर की बात है, जल की एक छोटी सी तरंग को उठने से रोक पाना भी, संभव नहीं हो सका है।

मृत्यु से उबर पाना, भौतिक जगत में अभी तक तो संभव हुआ नहीं, और स्थायी सुख-शान्ति की बात, अस्थायी दैहिक जीवन में, पूरी तरह से असंगत ही है।

हां, आध्यात्मिक विशेषज्ञों द्वारा, इस दिशा में किए गए प्रयत्न, अवश्य परिणाम परक रहे हैं। अपने अन्दर अन्तर्जगत के अध्ययन-विश्लेषण में उन्होंने पाया कि प्रकृति का नियमन करके पुरूष स्वरूपस्थ होता है। यही चिरंतन सुख-शान्ति की अवस्था है।

कठोपनिषद् के ऋषि का मंतव्य,उसका स्वानुभूत सत्य है-

**'तमात्मस्थं येनुपश्यंति धीरास्तेषां सुखं-शाश्वतम् नेतरेषां।'**

'जो धीर पुरूष उस आत्मस्थित (परमस्त्ता) को देखते हैं, उन्ही को शाश्वत सुख मिलता है, दूसरों को नहीं।'

तथा 'य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति।।'

'जो इसे (आत्मा को) जान लेते हैं, वे अमर हो जाते हैं।'

हमारी कठिनाई यह है, कि हम अपने को शरीर मान बैठे हैं। और अपने अविनाशी आत्मा के स्वरूप को भूल चुके हैं। आत्म-स्वरूप की उपलब्धि के लिए उद्योग करना, हम सबका परम धर्म है। यही वस्तुतः मानव धर्म है। यही सनातन सार्वभौमिक धर्म है। प्रस्तुत संकलन में इसी धर्म के अनुष्ठान की प्रेरणा, और उसके साधन-विधान का, अनुभव सिद्ध व्याख्यान है, जो परम पूज्य श्री स्वामी जी द्वारा अति अनुग्रह पूर्वक, सरल भाषा और सुबोध शैली में किया गया है।

किन्तु यह नितान्त व्यावहारिक धर्म है। निष्ठा पूर्वक साधनात्मक प्रक्रिया को अपनाकर ही, इस धर्म की धारणा हम कर सकते हैं। हमें अनिवार्यतः किसी आप्त महापुरुष (सद्गुरु)की शरण में रहकर, उनके मार्गदर्शन में साधना-रत होना होगा।

श्रीमद्भागवत के अनुसार-

**'तस्मात् गुरु प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेयमुत्तमम्।'**

परम श्रेय के इच्छुक मनुष्य को तत्वज्ञ गुरु की शरण में जाना चाहिए। और-

**तत्र भागवतान धर्मान् शिक्षेद् गुर्वात्मदैवतः।,**
**अमाययानुवृत्यायैष्तुर्येदात्माऽऽत्मदो हरिः।।**

गुरु को अपना इष्टदेव आत्मा मानें। उनकी निष्कपट भाव से सेवा करें, उन गुरुदेव भगवान से साधना-पथ का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करें। क्योंकि-

गुý बिनु भवनिधि तरै न कोई। जो विरंचि शंकर समहोई। (मानस)

किसी शायर ने ठीक ही कहा है–

'रसूलों की निगाहों में, अजब तासीर होती है।

निगाहे लुत्फ से देखें, तो खाक अक्सीर होती है।।'

सचमुच, गरीयसी गुरु–कृपा किसे कृतकृत्य नहीं कर देती ?

प्रस्तुत मानस–बोध आत्मोन्मुख जनों के लिए संजीवनी है। परम पूज्य श्री स्वामी जी की अहैतुकी अनुकम्पा से, इसका प्रकाशन, इस विश्वास के साथ किया गया है, कि इसमें आध्यात्मिक क्षेत्र की भ्रान्तियों का निराकरण पाकर, साधन–पथ के निष्ठावान पथिक, अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर हो सकेंगे।

अब से 50 वर्ष पूर्व जब पूज्य स्वामी जी धारकुंडी की गुफा में आकर विराजे थे उस समय यह हिसंक वन्य जन्तुओं से भरा, घनघोर जंगलों से आच्छादित पर्वत श्रेणियों की संधि में स्थित, एक समृद्ध झरने से युक्त, नितान्त निर्जन एवं भयावह स्थान था। तथापि ऋषियों, मुनियों की प्राचीन तप स्थली के रूप में, चित्रकूट की चौरासी कोश की परिक्रमा के अर्न्तगत, पवित्र अरण्य तीर्थों में इसकी मान्यता रही है। धारकुंडी से जुड़े अघमर्षण कुण्ड का उल्लेख भी श्री मद्भागवत में है–

**तमवृंहित मालोक्य प्रजासर्ग प्रजापतिः।**
**विन्ध्य पादानुपवृज्य सोऽचरद् दुष्कर तपः।।**
**तत्राघमर्षणं नाम तीर्थ पापहरं परम् ।**
**उपस्पृश्यानुसवनं तपसा तोषयद्हरिम्।।**

तदनुसार विन्ध पर्वतमाला में स्थित पुण्य तीर्थ अघमर्षण में रह कर दक्षप्रजापति ने प्रजावृद्धि की कामना से तपस्या की। महाभारत में उल्लिखित यक्ष–युधिष्ठिर संवाद की घटना यहीं की है–ऐसी भी लोकमान्यता है। पवित्र तीर्थ के रूप में आज भी क्षेत्रीय जनता की आस्था यहाँ से जुड़ी है। और अब तो पूज्य श्री स्वामी जी स्वयं, विग्रहवान भगवत्तीर्थस्वरूप होकर, लाखों–लाख श्रद्धालुओं को पुनीत कर रहे हैं। आप की दिव्य आभा से अभिभूत एक विद्वान की भावपूर्ण उक्ति दृष्टव्य है–

**श्री धारकुंड्यां विजने वनेषु,**
**गुहां समाश्रित्य करोति वासः।**
**योगी स्वरूपोह्यघमषर्ण स्वयं,**
**पाप–प्रणोदम् कुरुते जनानाम्।।**

इस प्रकार धारकुंडी का यह भयावह वन्य प्रान्त पूज्य स्वामी जी की दिव्य तेजोमयी विभूति से आलोकित हो उठा। लोगों के आकर्षण का केन्द्र बन गया।

दर्शनार्थी आने जाने लगे। उनमे से कुछ आध्यामिक जिज्ञासु भी होते, और विनम्र भाव से जब कुछ पूछते, तो पूज्य स्वामी जी अति मार्मिक उपदेश से उन्हें संतुष्ट करते। यही नियम भी है। गीता कहती है–

**''तद्विद्धि प्रणिपातेन, परिप्रश्नेन सेवया।**

**उपदेक्ष्यंति ते ज्ञानं, ज्ञानिनस्तस्व दर्शिनः।।''**

'उस तत्व ज्ञान को सेवा, सर्मपण और प्रश्नों के द्वारा समझो। तत्वदर्शी ज्ञानी महापुरुष उसका उपदेश करेंगे। इस प्रकार उपदेश–क्रम तो चला, किन्तु जब कभी कोई इसे लिपिबद्ध करने का प्रयास करता, तो स्वामी जी उसे झिड़क देते, और कहते कि अरे! यह लिखने या टेप करने की चीज नहीं है। इसे तो मानस पटल पर अंकित करके क्रियात्मक साधना का रूप देना चाहिए। अन्ततः कुछ भक्तों ने अनुनय विनय करके पूज्य श्री स्वामी जी के उपदेशों को टेप करने में सफलता पाई। इस प्रकार पूज्य श्री स्वामी जी की वाणी का पुस्तकरूप में अवतरण, एक अप्रत्याशित सुयोग ही कहा जायगा, क्योंकि पूज्य श्री का स्पष्ट निर्देश है कि आध्यात्मिक साधना का विषय, लिखने पढ़ने का नहीं, अपितु करने का है। यह गुरु–शिष्य के बीच नितांत वैयक्तिक आदान–प्रदान का विषय है। तथापि भक्तों के सानुनय सदाग्रह से राम सदा सेवक रुचि राखी इस नीति निर्वहन का पुनीत प्रतिफल मानस बोध के रूप में आप सबके सामने है। 'मानसबोध' की विषय वस्तु अध्यात्म–साधना की व्यावहारिक प्रक्रिया से संबद्ध है। अतः स्वाभाविक रूप से यह साधना में संलग्न साधकों के लिए विशेष उपयोगी एवं सुग्राह्य होगी। वैसे तो सभी के लिए कल्याणकारक एवं प्रेरणाप्रद है ही।

पुस्तक को 'मानसबोध' नाम दिया गया है। मानस का आशय मन से है। अन्तःकरण के स्वरूप और उसकी क्रिया पद्धति के विश्लेषण के साथ साथ मानस फलक पर साधनात्मक प्र_क्रिया का सुस्पष्ट एवं परिपूर्ण चित्रांकन संकलित उपदेशों में हुआ है। इस प्रकार मानस का सम्यक बोध कराना ही 'मानस बोध' का अभिप्राय है।

वस्तुतः शरीरधारी हर जीवात्मा का मन बहिर्मुख रहता है। इसलिए वह संसारोन्मुख बना रहता है। यह कैसे अन्तर्मुखी हो? कैसे यह ज्ञान हो जाय कि मेरा ज्ञेय संसार नहीं अपितु आत्म–स्वरूप है ? इसका बोध कराना, इसका दिशा–संदेश

पाठकों तक पहुंचाना, 'मानसबोध' का उद्देश्य है। मानस विवेचना के इस क्रम में रामचरित मानस तथा महाभारत के कथा प्रसंगों को आधार रूप में लिया गया है। उपदेशों में, जैसा कि स्वाभाविक है भाषा की रवानी एवं वाक्यविन्यास वार्ता शैली पर है। सामान्यतया पुस्तक लेखन की पद्धति से अलग हटकर विषयानुक्रम के बजाय यहाँ उपदेशानुक्रम रखना ही उचित समझा गया है, क्योंकि प्रायः प्रत्येक उपदेश में केन्द्रीय विषय वस्तु अन्तर्जगतीय साधना प्रक्रिया से सम्बन्धित है, अतः हर उपदेश अपने में प्रायः परिपूर्ण है और आद्योपांत सभी उपदेशों की सामग्री परस्पर संश्लिष्ट है।

अध्यात्म विद्या देश, काल धर्म सम्प्रदाय, जातिवर्ग की सीमाओं से परे, सार्वभौमिक, सार्वकालिक एवं सर्वजनीन है। क्योंकि इसकी गति-दिशा विभेदमयी बाहरी दुनिया के विपरीत एकत्व धर्मी आत्मा-उन्मुख रहती है, मानस उन्मुख रहती है। अतः यह 'मानस बोध' किसी पंथ सम्प्रदाय विशेष के लिए नहीं, बल्कि मानवमात्र के लिए है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि धारकुंडी आश्रम से जुड़े भक्त सेवकों और साधकों में सभी वर्गो, धर्मो, संप्रदायों के धनी-गरीब, अभेदभाव से सम्मिलित हैं।

हमारी शुभ कामना है कि 'मानसबोध' सभी के लिए मंगलकारी हो। ऊँ शम्।